RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 39 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 13 दिसम्बर, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक :39, 10-13 दिसम्बर 2020 तदनुसार 29 मार्गशीर्ष, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

पद्मभूषण महाशय धर्मपाल जी

ले. -श्री सुदर्शन शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब- जालन्धर

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के अनन्य शिष्य, आर्य समाज के कर्मठ सिपाही, आर्य जगत् के दानवीर भामाशाह महाशय धर्मपाल जी के निधन का समाचार सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। हम सबके ऊपर महाशय धर्मपाल जी का वरदहस्त सदैव रहता था। मेरे पिता स्व. पं. हरबंसलाल शर्मा जी के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे। महाशय धर्मपाल जी परम ईश्वर भक्त तथा यज्ञ के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे। प्रतिदिन यज्ञ करना उनके जीवन का आवश्यक अंग था। स्वाध्याय के प्रति उनकी विशेष रूचि थी। 98 वर्ष की आयु होते हुए भी वे अपने सभी दैनिक कार्यों को नियमपूर्वक करते थे। वे नियमित रूप से प्रातः 4 बजे उठकर योग, ध्यान, भ्रमण, व्यायाम, प्राणायाम, यज्ञ, दान, स्वाध्याय व सत्संग करते थे। संयमित दिनचर्या, आहार-विहार, जीवन शैली व शुद्ध सात्विक शाकाहारी भोजन के साथ वे अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखते थे। सच्चे अर्थों में वे एक कर्मवीर, धर्मवीर व शूरवीर थे। महाशय धर्मपाल जी का सम्पूर्ण जीवन परोपकार के कार्यों के प्रति समर्पित था। वे मानव कल्याण के कार्यों में सर्वदा रत रहते थे।

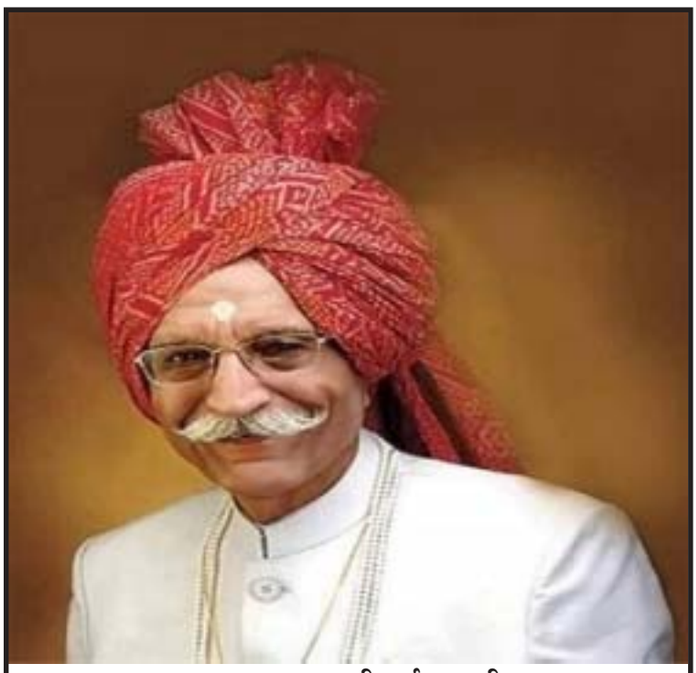

पद्मभूषण श्री धर्मपाल जी

महाशय धर्मपाल जी धर्म के मार्ग पर चलने वाले महान् योद्धा थे। उनके जीवन का एक-एक क्षण सेवा कार्यों में व्यतीत होता था। महाशय धर्मपाल जी ने अपने जीवन काल में अनेक विद्यालयों की स्थापना की, अनेक गुरूकुलों एवं गौशालाओं का वे पोषण करते थे। इनके संरक्षण में पूरे भारतवर्ष में अनेकों संस्थाएं कार्य कर रही हैं। महाशय धर्मपाल जी आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के आजीवन प्रधान रहे।

गीता के अनुसार वे एक सच्चे कर्मयोगी थे, जिनका उद्देश्य केवल कर्म करना था। वे फल की इच्छा नहीं करते थे-

कर्मण्यमेवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

निस्वार्थ भाव से दीन-दुःखियों की सेवा करने में वह हमेशा तत्पर रहते थे। वेद के उपदेशों को उन्होंने अपने जीवन में चरितार्थ किया हुआ था। वेदानुसार वे अपने धन का सत्कार्यों में सदुपयोग करते थे। **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः** की भावना से दान देते थे। **शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर** की भावना से वे बाँटने में विश्वास रखते थे। ऐसे निस्पृह योगी का इस संसार से जाना समाज की अत्यधिक क्षति है।

महाशय धर्मपाल जी ने अपनी मेहनत और ईमानदारी के बल पर जीवन के प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त की। एक छोटी सी पूंजी से शुरू किया गया कारोबार आज एक विशाल साम्राज्य का रूप धारण कर चुका है। देश विदेश में एमडीएच मसालों की आपूर्ति होती है। एक साधारण व्यक्ति से मसालों के शंहशाह तक उनका सफर बहुत ही प्रेरणादायक है। उनके जीवन से शिक्षा लेकर कोई भी व्यक्ति सफलता की बुलन्दियों को छू सकता है। इतना सब होते हुए भी महाशय धर्मपाल में अहंकार नाम की कोई चीज नहीं थी। वे हमेशा हंसमुख रहते थे। महाशय धर्मपाल जी यद्यपि अपना पूर्ण जीवन व्यतीत करके इस संसार से विदा हुए हैं फिर भी उनके निधन से एक शून्यता का अहसास हो रहा है। उनकी कमी को कभी भी पूरा नहीं किया जा सकता। वे सम्पूर्ण आर्य जगत् एवं देशवासियों के लिए प्रेरणास्रोत रहेंगे। उनके जीवन का एक-एक कार्य हमारे लिए आदर्श हैं। मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं पंजाब की समस्त आर्य समाजों व शिक्षण संस्थाओं की ओर से महाशय जी को अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूं तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस महान् आत्मा को अपने चरणों में स्थान देकर शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें। हम सभी महाशय धर्मपाल जी के बताए गए मार्ग पर चलते हुए उनके द्वारा प्रारम्भ किए गये अधूरे कार्यों को पूरा करें। महाशय धर्मपाल अपने कर्मों के द्वारा हमेशा अमर रहेंगे।

सुख–सुविधाओं को बढ़ाने का साधन अग्निहोत्र

ले.-अशोक आर्य पाकेट १/६१ रामप्रस्थ ग्रीन से. सैक्टर ७ वैशाली

यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय का आरम्भ यज्ञ की अग्नि से हुआ है। इस अग्नि द्वारा अग्नि होत्र का कार्य किस प्रकार से संपन्न हो इस पर ही अब तक के सब मन्त्रों में हमने विचार किया है। जब हम सब मन्त्रों के माध्यम से यज्ञ के रूप का वर्णन कर रहे हैं तो इस सप्तम मन्त्र में भी इस विषय को ही प्रतिपादित किया गया है कि यह यज्ञ कैसा हो? इस हेतु मंत्र अवलोकनीय है:-

अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं सम्मार्ज्मि।

नमो देवेभ्य: स्वधा पितृभ्य: सुयमे मे भूयास्तम्।। यजुर्वेद २.७।।

भावार्थ

ऋषि भाष्य के अनुसार इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया गया है:-

ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मन्त्र में कहे हुए यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि होता है। क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी लपट देखने में आती है वैसे अग्नि का ऊपर ही को चलने जलने का स्वभाव है तथा सब पदार्थों के छिन्न भिन्न करने का भी उसका स्वभाव है और यान व अस्त्र शस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ शीघ्र गमन व विजय का हेतु हो कर बसंत आदि ऋतुओं से उत्तम उत्तम पदार्थों का सम्पादन करके अन्न और जल को शुद्ध या सुख देने वाले कर देता है ऐसा जानना चाहिए।

व्याख्यान

मन्त्र के इस भावार्थ के आलोक में जो तथ्य उभर कर सामने आते हैं, वह इस प्रकार हैं:-

घर की उन्नति का साधक गृहपति होता है:-

गृहपति ही इस घर की सब प्रकार की उन्नतियों का साधन होता है। वह ही अग्नि को अपने घर में स्थापित करता है, जिस पर सब प्रकार के यज्ञ किये जाते हैं और भोजनादि पदार्थ बनाने का यज्ञ भी गृहपति के धन पैदा की गई अग्नि से ही होता है। गृहपति ही घर की सब व्यवस्था करता है और घर की आर्थिक तथा अन्य सब प्रकार की सम्पन्नता भी उस पर ही निर्भर होती है। इस सब की प्राप्ति के लिए वह सदा अग्नि से खेलता है। जब वह कोई व्यापार कर रहा होता है तो इस व्यापार में प्रयोग होने वाला तेज उसे अग्नि से ही मिलता है। किसी से व्यवहार करता है तो यह व्यवहार भी हमारे आंतरिक तेज से आता है। यह आतंरिक तेज भी हमारे अन्दर निरंतर जल रही अग्नि से ही मिलता है। इस प्रकार विश्व के सब कार्य, सब व्यवसाय अग्नि से ही संपन्न होते हैं। इस अग्नि को ही घर का स्वामी सदा अपने घर में बनाये रखता है। अग्नि सदा ऊपर को ही उठती है।

हम प्रति दिन अपने घरों में अग्नि को जलाते हुए देखते हैं और पाते हैं कि अग्नि को चाहे कहीं से भी जलाया जावे, इसकी लपट सदा ऊपर को ही जाती है, कभी नीचे नहीं जाती। इस सिद्धांत का आदर्श ही प्रत्येक जीव के अन्दर भी दिखाई देता है। इस अग्नि की गरमी से चलने वाला जीव का शरीर तथा जीव की सोच भी सदा ऊपर को ही उठती है, उन्नति की ओर ही जाती है, भौतिक अग्नि का ही रूप होता है हमारे अन्दर की अग्नि भी। जब हम अन्दर की अग्नि के ऊपर उठने के कारण स्वयं भी ऊपर उठने लगते हैं तो सब प्रकार की उन्नति हमें मिलती है। यही बाह्य अग्नि का गुण है और यही हमारी अन्दर की अग्नि का भी गुण होता है।

अग्नि सब बुराइयों का नाश करती है:-

जिस प्रकार यज्ञ की अग्नि का गुण है कि यह दुर्गन्ध का नाश करती है और सुगंध को बढ़ाती है। रोगाणुओं का नाश कर पौष्टिकता देती है। जो भी इस के संपर्क में आता है उसे शुद्ध पवित्र बनाकर वापिस लौटा देती है। इस प्रकार यह अग्नि सब बुराईयों को छिन्न भिन्न कर देती है और इसके स्थान पर अच्छाइयों को एकत्र कर देती है। इससे स्पष्ट होता है कि यह अग्नि बुराइयों को छिन्न भिन्न करने की शक्ति रखती है और यह अपनी इस शक्ति का सदा प्रयोग करती रहती है। हमारे अन्दर जो गर्मी है, वह भी तो अग्नि का ही एक रूप है। जब हम हमारे अन्दर की गर्मी को तीव्र करने के लिए सुगंधित तथा पौष्टिक पदार्थ भोजन के माध्यम से देते हैं, रोगनाशक पदार्थ हमारे भोजन का भाग होते हैं तो हमारे अन्दर की अग्नि इन पदार्थों का भोजन कर, इनकी शक्ति को बढ़ा कर हमें स्वस्थ बनाने का काम करती है किन्तु जब हम रोग लाने वाले गंदे पदार्थ यथा मद्यपान करना, तम्बाकू का प्रयोग करना, मानवीय भोजन को छोड़ कर दानवीय भोजन करना अर्थात् मांसाहार करने लगते हैं तो हमारे अन्दर की अग्नि इन गंदे पदार्थों के सेवन से दूषित हो जाती है। इस अवस्था में यह अग्नि शुद्ध रुधिर नहीं बना पाती। इसका ही परिणाम होता है कि हम रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। इसलिए यह रोग रूपी गन्दगी का नाश करने के लिए हमें शुद्ध पवित्र अग्नि की आवश्यकता होती है जो शुद्ध पवित्र पदार्थों से ही बन पाती है। जब हम यह पदार्थ उपभोग करते हैं तो हमारी अन्दर की अग्नि भी अन्दर के सब दोषों को छिन्न भिन्न कर देती है।

शीघ्र गमन का कारण अग्नि:-

चाहे हम सीधे रूप में अग्नि जलाकर और उसे ऊपर से उसे ढ़क कर इस अग्नि को सुरक्षित रखते हुए वायु में उड़ें या फिर कोई मशीन बनाकर उस में पैट्रोल आदि के प्रयोग से अग्नि पैदा कर उड़ते हैं तो हम बहुत दूर की यात्रा को भी बहुत शीघ्र ही पूरा कर लेते हैं। इस प्रकार अग्नि के प्रयोग से हम अपनी बहुत लम्बी यात्रा को भी शीघ्र ही पूर्ण करने में सक्षम होते हैं। इस शीघ्र गमन के साधन को आज हम वायुयान के नाम से जानते हैं। लाखों वर्ष पहले से ही हमारे देश में वायुयानों से यात्रा करने की परम्परा रही है। इनके प्रयोग से ही राक्षस लोग हमारे देश में आतंक को फैलाए हुए थे और जब हमने इसका प्रयोग आरम्भ किया तो हम देश को विनाश से निकाल कर उन्नति की ओर ले गए। योगीराज कृष्ण जी गुजरात के नगर द्वारिका में रहते थे किन्तु प्रतिदिन दिल्ली के हस्तिनापुर क्षेत्र में ही हमें मिलते रहे हैं। यह सब वायुयान की अग्नि के कारण ही संभव हो पाता था। इसलिए हम अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए इसे अपनी यात्रा के साधन के रूप में भी प्रयोग करते हुए यात्रा को सुगम और शीघ्र पूर्ण होने वाली बना पाने में सक्षम हुए हैं।

शत्रु विजय का साधन अग्नि:-

शत्रुओं पर विजय पाने के लिए भी अग्नि और इसके विनाशक रूप, दोनों की ही आवश्यकता होती है। जब तलवारों का युग था तो लोहे को अग्नि में डाल कर पिघलाया जाता था और फिर इस पिघले हुए लोहे को बार बार अग्नि में डालते थे और बार बार कूटते थे, जिससे इस का आकार तलवार का दिया जाता था और एक बार फिर से इसे अग्नि में डाल कर खूब गर्म कर इस की धार बनाई जाती थी। इस धार में इतनी शक्ति होती थी कि एक झटके से ही शरीर को चीर कर रख देती थी। आज के युग में गोली, बम गोले और एटम बम आ गए हैं। यह सब भी अग्नि का ही रूप हैं और अग्नि से ही प्राप्त होते हैं। इनके अन्दर अग्नि ही भरी होती है, जिसे सुरक्षित किया होता है और जब चाहें इसे प्रकट कर शत्रु पर फैंक दिया जाता है और कुछ क्षणों में ही शत्रु का नाश हो जाता है। इस प्रकार यह अग्नि हमें शत्रु पर विजयी होने के साधन के रूप में भी काम आती है। यह इस अग्नि का विनाशक रूप है।

बसंतादी ऋतुओं को बनाती है:-

हम एक वर्ष में अनेक ऋतुओं को झेलते हैं और इनका आनंद लेते हैं। कभी उष्णता आती है, कभी ठंडक आती है, कभी बसंत आ जाती है। यह सब ऋतुएं भी अग्नि के कारण होती हैं। जब सूर्य हमें गर्मी देने लगता है तो इसकी गर्म अग्नि अपना तेज दिखा रही होती है। जब हम ठंडक अनुभव करते हैं तो सूर्य की यह अग्नि कुछ शांत हो कर हमें मध्यम अग्नि देती है। जब हम सर्दी से ठिठुर रहे होते हैं तो यह अग्नि थोड़ी सी शीतल हो कर शीत की अवस्था बना देती है और जब यह मध्यम हो जाती है तो हम वसंत का आनंद लेते हैं। इस बसंती मौसम

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

शून्य से शिखर तक महाशय धर्मपाल जी

महानता के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान महाशय धर्मपाल जी का 3 दिसम्बर 2020 को 98 वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। महाशय धर्मपाल जी समस्त गुणों का भण्ड़ार थे। इस संसार में कोई गुणवान होता है तो कोई धनवान होता है। कोई विद्वान् होता है तो कोई बलवान, परन्तु इन सभी गुणों का समावेश हमें महाशय धर्मपाल जी में देखने को मिलता है । शून्य से शिखर तक का उनका सफर बहुत ही आदर्श एवं प्रेरणादायक है। प्रत्येक बाल, युवा, वृद्ध, व्यवसायी, उद्यमियों के लिए वे एक प्रेरणा के पुंज हैं। व्यावसायिक कुशलताओं के कारण ही उन्हें गत वर्ष महामहिम राष्ट्रपति जी के द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित किया गया था। देश भर में अनेक सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा संस्थाएं उन्हीं की प्रेरणा व सहयोग से चल रही हैं।

महाशय धर्मपाल जी का जन्म 27 मार्च 1923 को पाकिस्तान के सियालकोट में हुआ था। जब 1947 में देश का विभाजन हुआ तो उन्हें अपना सब कुछ छोड़कर भारत आना पड़ा। सियालकोट में उनकी देगी मिर्च के नाम से दुकान थी तथा वे अपने पिता के साथ व्यापार में हाथ बंटाते थे। विस्थापन के बाद उन्होंने अपना कुछ समय अमृतसर में एक शरणार्थी शिविर में बिताया। उसके पश्चात वे काम की तलाश में दिल्ली आ गये। प्रारम्भ में परिवार के पालन-पोषण के लिए उन्होंने दिल्ली के कनॉट प्लेस और करोल बाग के बीच तांगा चलाना शुरू किया। फिर उन्होंने तांगा बेचकर 1953 में चांदनी चौक में एक दुकान किराये पर ली। इस दुकान का नाम उन्होंने महाशियां दी हट्टी रखा जो बाद में एमडीएच के नाम से देश-दुनिया में विख्यात हो गया। यहीं से उनके जीवन की यात्रा प्रारम्भ हुई। महाशय धर्मपाल जी अपने व्यापार में उन्नति करते गए और निरन्तर नई ऊँचाईयों को छूते रहे।

वेदों, शास्त्रों के उत्थान और पुनर्रूद्धार के लिए महाशय जी हमेशा याद रहेंगे। महाशय जी का जीवन देखकर एक बात तो सिद्ध हो जाती है कि अगर किसी में कुछ करने की इच्छा हो और ईमानदारी हो तो दुनिया की कोई भी ताकत झुका नहीं सकती। महाशय धर्मपाल जी अपनी शुचिता और ईमानदारी से एक दैदीप्यमान नक्षत्र थे। भारतीय परिधान के वे इतने शौकीन थे कि अपने जीवन के अन्तिम समय तक मोतियों की माला पहनते रहे। यज्ञ में वे हमेशा धोती और पीतांबरी ही पहनते थे। पगड़ी उनकी शान थी। महाशय जी दिल खोलकर संस्थाओं, गुरूकुलों, गौशालाओं को दान देते थे। विद्वानों, संन्यासियों का खूब आदर और सत्कार करते थे।

महाशय धर्मपाल जी सिर्फ पांचवी तक ही पढ़े थे। परन्तु अपनी ईमानदारी के बल पर उन्होंने बड़े-बड़े दिग्गजों को भी पीछे छोड़ दिया। उन्होंने शुचिता और पारदर्शिता से अपने कारोबार को बुलन्दियों तक पहुँचाया और समाज में अपना प्रतिष्ठित स्थान बनाया। महाशय जी ने जी तोड़ मेहनत करके 2 हजार करोड़ रूपये का एमडीएच मसाला उद्योग खड़ा किया था। इस उम्र में भी उनकी सेहत ठीक थी और वे प्रतिदिन अपना कारोबार देखते थे। सुबह 9 बजे फैक्टरी पहुँच जाते थे और सारे काम अपनी निगरानी में करवाते थे। कभी भी उन्हें नकारात्मक बातें करते हुए नहीं देखा। हमेशा खुश रहते थे। सकारात्मक सोच के साथ जीते थे और ऐसे ही लोगों को अपने आसपास रखते थे। उनसे मिलने कोई भी आ सकता था। महाशय धर्मपाल जी खुद ही अपने ब्रांड के एम्बेसडर थे। वे किसी भी सेलिब्रिटी को अपने विज्ञापन में लेने के खिलाफ थे। उनका कहना था कि मसालों के बारे में मुझसे बेहतर कोई नहीं जान सकता क्योंकि वे 12 वर्ष की उम्र से मसालों का कारोबार कर रहे थे। महाशय धर्मपाल जी अपनी कमाई का अधिकांश भाग दान देते थे।

महाशय धर्मपाल जी का जीवन आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श और प्रेरणास्रोत है। वे भले ही स्वयं अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके थे परन्तु आज वे हजारों बच्चों को शिक्षा देने का कार्य कर रहे थे। उनके नाम से अनेकों शिक्षण संस्थाएं देश भर में चल रही हैं। ऐसे महान् व्यक्तित्व का इस संसार से जाना अपूरणीय क्षति है परन्तु प्रकृति के नियम को बदला नहीं जा सकता, विधि के विधान को टाला नहीं जा सकता। इसलिए ऐसे महापुरूष के परलोक गमन पर शोक मनाने के बजाय उनके अच्छे कार्यों को करने का जीवन में संकल्प लेना चाहिए। महाशय धर्मपाल जी अपने अच्छे कर्मों के कारण हमेशा अमर रहेंगे, सम्पूर्ण आर्य जगत् के लिए प्रेरणास्रोत रहेंगे।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

कर्मठ व्यक्तित्व -श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल

आर्य समाज नवांशहर के कर्मठ कार्यकर्ता श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी का निधन आर्य समाज की अपूरणीय क्षति है। श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी महर्षि दयानन्द के सच्चे सिपाही थे। आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रति मनसा, वाचा कर्मणा समर्पित थे। श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी आर्य समाज नवांशहर के कई वर्षों तक मन्त्री रहे। आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं में कई वर्षों तक विभिन्न पदों पर रहकर उन संस्थाओं की उन्नति के लिए कार्य किया। श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वेद प्रचार अधिष्ठाता भी रहे तथा वर्तमान में साहित्य विभाग के अधिष्ठाता थे।

श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी का शिक्षा के प्रति अत्याधिक योगदान रहा। वे स्वयं एक शिक्षक के रूप में सरकारी सेवा से निवृत्त हुए थे। उनकी शिक्षा नवांशहर की आर्य शिक्षण संस्थाओं में हुई थी। इस कारण उनके ऊपर बचपन से ही आर्य समाज का रंग चढ़ गया था। वे एक कट्टर आर्य समाजी थे तथा कोई भी सिद्धान्तों के विरूद्ध कार्य सहन नहीं करते थे। आर्य समाज की विचारधारा के प्रति उन्हें विशेष लगाव था। वे एक स्वाध्यायशील एवं धार्मिक व्यक्ति थे। आर्य समाज के साहित्य का उन्होंने काफी गहन अध्ययन किया हुआ था। स्वाध्याय के बल पर ही वे किसी गुरूकुल के पढ़े हुए विद्वान् से कम नहीं थे।

श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी का सम्पूर्ण जीवन वैदिक विचारधारा के प्रति समर्पित रहा। वे महर्षि दयानन्द द्वारा लिखी गई संस्कारविधि के अनुसार संस्कारों को मान्यता देते थे। यहां तक कि वे अपनी मृत्यु से पूर्व अपने परिवार वालों को कह गये थे कि उनके मरने पर किसी प्रकार का पिण्ड़दान आदि का पाखण्ड़ न करना और मेरा अन्तिम संस्कार महर्षि दयानन्द द्वारा बताई गई विधि के अनुसार करना तथा सम्पूर्ण क्रिया कर्म भी वैदिक पद्धति से ही करना। ऐसे सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्ति का जाना केवल परिवार के लिए ही नहीं अपितु पूरे समाज के लिए अपूरणीय क्षति है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी के निधन पर गहरा दु:ख व्यक्त करती है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने एक कर्मठ कार्यकर्ता तथा महर्षि दयानन्द के सच्चे सिपाही को खो दिया है जिसकी भरपाई करना अत्यधिक कठिन है। आर्य समाज नवांशहर एवं शिक्षण संस्थाओं की उन्नति के लिए दिये गए उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से तथा पंजाब की समस्त आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं की ओर से श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी को अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान देकर शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें तथा शोक संतप्त परिवार को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें। दु:ख की इस घड़ी में हम सभी शोक संतप्त परिवार के साथ हैं।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

गीता दर्शन

ले.-डा. सत्यदेव 507-गोदावरी ब्लाक, अशोका सिटी कृष्णा नगर-मथुरा

(गतांक से आगे)

गीता सन्देश देती है कि मानवमात्र को कर्म करने का अधिकार है, फल में कभी नहीं। फल की इच्छा से कभी कर्म मत करो। अकर्म अर्थात् कर्म के न करने में कभी किसी की इच्छा नहीं होनी चाहिए।

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।गीता, अ 2/47

गीता के कर्ममार्ग या कर्मयोग के प्रेरक इसी श्लोक को महामन्त्र कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इस श्लोक के चारों पदों को कर्म मार्ग की चार सीढ़ी कह सकते हैं।

असक्ति का परित्याग करते हुए कर्म करने में किसी भी प्रकार की बुराई का तनिक भी डर नहीं है अत: गीता का उपदेश है कि किसी भी व्यक्ति को कभी भी अपने कर्म का त्याग नहीं करना चाहिए, अपितु कर्म के फल का त्याग करना अत्यावश्यक है। यही कारण है कि विद्वान लोग काम्य कर्म के त्याग को संन्यास कहते हैं, किन्तु चतुर ज्ञानी लोगों के विचार से सर्वकर्मों के फल का त्याग ही वास्तव में संन्यास है-

''काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदु:।

सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणा:।।गीता, अ 18/2

कर्त्ता को कर्म करने में कर्त्तापन के अभिमान को भी छोड़ना चाहिए, क्योंकि समस्त प्राणी त्रिगुणमयी प्रकृति के गुणों के अनुचर हैं, जो बलपूर्वक अपने गुणों (सत्, रज, तम) के माध्यम से (प्राणी की अनिच्छा होने पर भी) कार्य कराया करती है। मैंने यह किया, मैं ऐसा करता हूँ, मैंने यह करके दिखा दिया आदि कथन कर्त्तापन के मिथ्याभास हैं। वस्तुत: प्रकृति के गुणों के द्वारा समस्त कर्म-प्रक्रिया स्वत: चलती रहती है, हाँ प्राणी उन कर्मों के करने वाला अवश्य है।

मनुष्य जो भी कार्य करे उन समस्त कार्यों को मूलत: भगवद् अर्पण बुद्धि से करना चाहिए। सर्वकर्म भगवदर्पण करने की आज्ञा एवं उसका फल अपनी प्राप्ति के लिए बतलाते हुए गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं-

''यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।गीता, अ 9/27

अर्थात् जीव जो कुछ करे, खाये, आहुति दे, दान करे या तपस्या करे, उन सब को भगवान के समर्पण कर दे, इसका फल यह होगा कि वह शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धन से मुक्त होकर मुझको प्राप्त हो जावेगा। इस प्रकार गीता के कर्ममार्ग की या कर्मयोग की निष्पत्ति होती है। अज्ञानी व्यक्ति और ज्ञानी पण्डित के कर्म में इतना ही अन्तर है कि अज्ञानी व्यक्ति फलाकांक्षा, सकाम या आसक्ति पूर्वक कर्म करता है और ज्ञानी, पण्डित, विलक्षण व्यक्ति आसक्ति से रहित होकर कार्यों का व्यवहार कर्त्तव्य बुद्धि से 'लोकसंग्रह' के निमित्त करता है। लोकसंग्रह गीता का एक सारगर्भित शब्द है, जिसका आशय है कि लोककार्यों का यथावत् रूप से निर्वाह करना।

2.2 ज्ञान मार्ग-गीता के कर्म मार्ग में प्रवृत्त होने के लिए ज्ञान तथा भक्ति का सहारा अत्यन्त आवश्यक है। कर्म के कर्त्तापन के अभिमान से ज्ञानी पुरुष ही छुटकारा पा सकता है, अज्ञ या सामान्य पुरुष नहीं सभी कर्मों को ईश्वरार्पण भाव से करने के लिए भक्ति का आश्रय लेना ही पड़ेगा। इस प्रकार गीता ज्ञानमार्ग का महत्व प्रकट करती है, किन्तु गीता का ज्ञानमार्ग विलक्षण है। दूसरे ज्ञानमार्गी दर्शन, (जैसे सांख्य दर्शन जिसे मोक्ष प्राप्ति का साधन बतलाते हैं, वह चित्-अचित् प्रकृति-पुरुष का विवेकज्ञान है किन्तु गीता का ज्ञान मार्ग इससे भी निराला है, वह आत्मा के एकत्व का सम्यक् अनुभव है। गीता के ज्ञान मार्ग की दो दिशायें हैं-

अ. सर्वभूतों में आत्मा का दर्शन तथा

ब. आत्मा में सब भूतों को देखना।

गीता के ज्ञान मार्ग की ये दोनों दिशायें एक दूसरे की पूरक हैं।

भगवान ने अर्जुन को जब अपने विराट् स्वरूप को दिखलाया, तब अर्जुन को एक विराट् आत्मा के अन्दर अनेक रूपों में बंटे हुए सम्पूर्ण जगत् को अपनी दिव्य चक्षुओं से देखा, उसका सम्यक् रूपेण **'एकस्थं कृत्स्नं जगत्'** के माध्यम से आत्मैकत्व का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हुआ। परन्तु जैसा सच्चा ज्ञानी होना बड़ा ही कठिन काम है जो सब किसी में परमात्म भाव रखे, स्थूल जगत् से लेकर सूक्ष्म प्राणियों तक में एक ही अन्तर्यामी पुरुष का साक्षात्कार करे। अत: अर्जुन जैसे ज्ञानी भक्त संसार में दुर्लभ होते हैं।

ज्ञान मार्ग का अनुसरण करने वाले ऐसे पुरुष की विद्या-विनय सम्पन्न ब्राह्मण में, गौ में, हाथी में, कुत्ते में तथा चाण्डाल में समान दृष्टि होती है, अत: वह समदर्शी कहलाता है। गीता में ज्ञानी महापुरुषों की समदृष्टि और स्थिति का तथा उनको परमगति प्राप्त होने का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

''विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मण गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन:।।गीता, अ 5/18

परन्तु जिनका वह अज्ञान परमात्मा के तत्वज्ञान द्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशित कर देता है अर्थात् ऐसे तत्वज्ञानी को वह ज्ञान परमात्मा के स्वरूप को साक्षात् कराता है। यहां पर सूर्य के दृष्टान्त से ज्ञान की महिमा को गीता के शब्दों में स्पष्ट किया है-

''ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मान:।

तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।।गीता, अ 5/16

2.3 ध्यान मार्ग-गीता में ध्यानमार्ग के लिए 'ध्यान योग' शब्द प्रयुक्त किया गया है। गीता के छठे अध्याय में ध्यानमार्ग की विशद व्याख्या की गई है। चंचल मन को एकाग्र करने के लिये आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि योग के समस्त उपायों का उपदेश गीता में किया गया है। ध्यान मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा देते हुये उसके साधन की विधि पर प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार गीता अध्याय छ: के श्लोक संख्या 11 से 18 तक ध्यानयोग के बारे में वर्णन किया गया है। परन्तु ध्यान के द्वारा एकाग्र चित्त का उपयोग क्या होगा? इसका उत्तर गीता देती है कि ऐसे एकाग्र चित्त को जगदाधार भगवान में लगावें। सांसारिक विषय रूपी कीचड़ से अशुद्ध, कलुषित चित्त को क्या मनुष्य भगवान को अर्पित कर सकता है?

कदापि नहीं। परन्तु प्राणायाम आदि योग साधनों से परिष्कृत शुद्ध चित्त को ही भगवान की शरण में लगाना चाहिए। ध्यानयोगी पुरुष एकी भाव में स्थित होकर सम्पूर्ण भूतों में निवास करने वाले भगवान को भजता है, वह जिस किसी अवस्था में रहने पर भी भगवान के ही साथ रहता है। गीता कोरे ध्यान का उपदेश नहीं करती, अपितु ध्यानयोग का सच्चा उपयोग एकाग्रचित्त से सर्वत्र व्यापक भगवान के भजन करने में है। गीता में भगवान ने ध्यानमार्ग परायण योगी को तपस्वी, ज्ञानी तथा कर्मी से भी अधिक बढ़कर ऊँचा स्थान दिया है-

''तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन:।।गीता, अ 6/46

गीता के अनुसार ध्यानमार्ग का अनुसरण करने वाले योगी की श्रेणी बताई है-

(अ) युक्त-ज्ञान-विज्ञान से तृप्त अन्त:करण वाला, मिट्टी, पत्थर तथा स्वर्ग को एक समान समझने वाला, जितेन्द्रिय विकार रहित योगी 'युक्त' कहलाता है।

(आ) युक्ततम-जो अपनी अन्तरात्मा को भगवान में लगाकर सम्यक्-रूपेण श्रद्धा रखता हुआ ईश्वर का निरन्तर चिन्तन करता है, वह योगी युक्ततम कहलाता है। युक्त योगियों से युक्ततम योगी श्रेष्ठ होता है। **(क्रमश:)**

ऋग्वेद में विज्ञान-भाग-1

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेद का भाष्य करने से पूर्व लिखा है कि ऋग्वेद में सभी पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है, इसलिए विद्वान् लोगों को चाहिए कि ऋग्वेद को पढ़कर उन मन्त्रों से प्रथम ईश्वर से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सब पदार्थों को यथावत् जानकर सब पदार्थों के गुणों और स्वभाव का वर्णन किया जाए, वह ऋक् और वेद अर्थात् जो सत्य-सत्य ज्ञान का हेतु दो शब्दों में ऋग्वेद बनता है। सत्य-सत्य ज्ञान के प्रकाश के लिए यह आवश्यक है कि ऋग्वेद में विज्ञान के अनुरूप ज्ञान हो। वास्तव में विज्ञान के विरूद्ध ऋग्वेद में कुछ भी नहीं कहा गया है। इतना ही नहीं वरन् ऋग्वेद में कई मंत्रों द्वारा सीधा विज्ञान की मान्यताओं का समर्थन भी किया गया है। इस लेख में हम ऋग्वेद के विज्ञान समर्थक मंत्रों को प्रस्तुत कर पाठकों को बतावेंगे कि किस प्रकार ऋग्वेद में विज्ञान समर्थक विचार व्यक्त किये गए हैं।

ऋग्वेद के प्रारम्भ में ही अग्नि और जल द्वारा वाष्प उत्पन्न कर उससे तीव्र गति वाली सवारियों को बनाने को कहा गया है।

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पति।
पुरूभुजा चनस्यतम्।।
ऋ.1.3.1.

पदार्थ-हे विधा के चाहने वाले मनुष्यों। तुम लोग (द्रवत्पाणी) शीघ्र वेग का निमित्त पदार्थ विद्या के व्यवहार सिद्धि करने में उत्पन्न हेतु (शुभस्पती) शुभ गुणों के प्रकाश को पालने और (पूरूभुजा) अनेक खाने पीने के पदार्थ देने में उत्तम हेतु (अश्विना) अर्थात् जल और अग्नि तथा (यज्वरी:) शिल्प विद्या का सम्बन्ध कराने वाली (इष:) अपनी चाही हुई अन्न आदि पदार्थों की देने वाली कारीगरी की क्रियाओं को (चनस्यत्तम्) अन्त के समान अति प्रीति से सेवन किया करो।

अब अश्विना शब्द के विषय में निरूक्त आदि का प्रमाण दिखलाते हैं-हम लोग अच्छी-अच्छी सवारियों को सिद्ध करने के लिए (अश्विना) पूर्वोक्त जल और अग्नि को कि जिनके गुणों से अनेक सवारियों की सिद्धि होती है तथा (देवों) जो कि शिल्प विद्या में अच्छे-अच्छे गुणों के प्रकाशक और सूर्य के प्रकाश से अन्तरिक्ष में विमान आदि सवारियों से मनुष्यों को पहुंचाने वाले होते हैं (ता) उन दोनों को शिल्प विद्या की सिद्धि के लिए ग्रहण करते हैं। मनुष्य लोग जहां-जहां साधे हुए अग्नि और जल के सम्बन्ध युक्त रथों से जाते हैं वहां सोम विद्या वाले विद्वानों का विद्या प्रकाश निकट ही है।

भावार्थ-इस मंत्र में शिल्प विद्या को सिद्ध करने का उपदेश दिया है। शिल्प विद्या द्वारा मनुष्य लोग कला युक्त सवारियों को बना कर संसार में अपना तथा अन्य लोगों का उपकार कर सुख पावें।

अश्विना पुरूदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिर: ।।ऋ. 1.3.2

पदार्थ-हे विद्वानों। तुम लोग (पुरूदंससा) जिससे शिल्प विद्या के लिए अनेक कर्म सिद्ध होते हैं (धिष्ण्या) को कि सवारियों में वेग आदि की तीव्रता उत्पन्न करने में प्रबल (नरा) उस विद्या के फल को देने वाले और (शवीरया) वेग देने वाली (धिया) क्रिया से कारीगरी में युक्त करने योग्य अग्नि और जल हैं वे (गिर:) शिल्प विद्या गुणों की बताने वाली वाणियों को (वनतम्) सेवन करने वाले हैं इसलिए इनसे अच्छी प्रकार उपकार लेते रहो।

भावार्थ-सब कारीगरों को चाहिये कि तीव्र वेग देने वाली कारीगरी और अपने पुरूषार्थ से शिल्प विद्या की सिद्धि के लिए उन अश्वियों की ठीक से योजना करें।

अगले मंत्र में कहा गया है कि हे मनुष्य लोगों। तुमको सब सुखों की सिद्धि के लिए शिल्प विद्या में अग्नि और जल का यथावत् उपयोग करना चाहिए।

यज्ञ द्वारा आकाशस्थ जल की शुद्धि के विषय में कहा गया है-

स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्टम् मनीषिण:।
यत्रामृतस्य चक्षणम्।।
ऋ.1.13.5

पदार्थ-हे (मनीषिण:) बुद्धिमान विद्वानों। (यंत्र) जिस अन्तरिक्ष में (अमृतस्य) जल समूह का (चक्षणम्) दर्शन होता है, उस (आनुषक्) चारों ओर से घिरे और (घृतपृष्टम्) जल से भरे हुए (बर्हि:) अन्तरिक्ष को (स्तृणीत) यज्ञ के धुएं से आच्छापन करो यज्ञ उसी अन्तरिक्ष में अन्य भी बहुत पदार्थ जल आदि को जानो।

भावार्थ-विद्वान् लोग अग्नि में जो घृत आदि पदार्थ छोड़ते हैं वे अन्तरिक्ष में जाकर वहां पर स्थित जल को शुद्ध करते हैं और वह शुद्ध हुआ जल बरस कर सुगन्धि आदि गुणों से सब पदार्थों को आच्छादित कर सब प्राणियों को सुखी करता है।

मरूत: पिबत ऋतुना पोत्राद्यत्तं पुनीतन।
यूयं हि ष्ठा सुदानव:।।
ऋ.1.15.2

पदार्थ-ये (मरूत:) पवन (ऋतुना) बसन्त आदि ऋतुओं के साथ सब रसों को (पिबत) पीते हैं, वे ही (पोत्रात्) अपने पवित्र कारक गुण से (यज्ञम्) तीन प्रकार के यज्ञों को (पुनीतन) पवित्र करते हैं तथा (हि) जिस कारण (यूयम्) वे (सुदानव:) पदार्थों को अच्छी प्रकार दिलाने वाले (स्थ:) हैं, इससे वे युक्ति के साथ क्रियाओं में युक्त हुए कार्यों को सिद्ध करते हैं।

भावार्थ-ऋतुओं के अनुक्रम से पवनों में भी यथा योग्य गुण उत्पन्न होते हैं। इसी से वे त्रसरेणु आदि पदार्थों वा क्रियाओं के हेतु होते हैं तथा अग्नि में सुगन्धित पदार्थों को यज्ञ द्वारा वे पवित्र होकर प्राणी मात्र को सुख देते हैं। ऋ. 1.15.1 में बताया गया है कि सूर्य ही वर्ष, उत्तरायण, दक्षिणायन, बसन्त आदि ऋतु, चैत्र आदि 12 महीने, शक्ल और कृष्ण पक्ष, दिन, रात, मुहूर्त आदि समय के विभागों को प्रकाशित करता है।

ऋ. 1.19.7 में कहा गया है कि सूर्य द्वारा जलाशयों से जो पानी वाष्प के रूप में परिवर्तित होता है वह वायु के संयोग से पृथ्वी से अन्तरिक्ष में जाता है तथा घने बादलों के रूप में बदल जाता है। वही अत्यधिक घना हो जाने पर बरसता है। दो बादलों के टकराने पर विद्युत चमकती है और बादलों में ही छिप जाती है। वायु के संयोग से ही वर्षा होती है। पवन के बिना अग्नि नहीं जल सकती है।

मरूत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये।
सजूर्गणेन तृम्पतु।। ऋ.1.23.7

पदार्थ-हे मनुष्यों। जैसे इस संसार में हम लोग (सोमपीतये) पदार्थों को भोगने के लिए जिस (मरूत्वन्तं) पवनों के सम्बन्ध से होने वाली (इन्द्रम्) बिजली को (हवामहे) ग्रहण करते हैं। (सजू:) जो सब पदार्थों में एक ही वर्त्तने वाली (गणेन) पवनों के समूह के साथ (न:) हम लोगों को (आ तृम्पतु) अच्छे प्रकार तृप्त करती है वैसे उसको तुम लोग भी सेवन करो।

भावार्थ मनुष्यों को योग्य है कि जिस सहायकारी पवन के अभाव में अग्नि कभी प्रज्वलित होने को समर्थ और उक्त प्रकार बिजली रूप अग्नि के बिना किसी पदार्थ की बढ़ती का सम्भव नहीं हो सकता ऐसा जानें।

ऋ. 1.23.18 में कहा गया है कि सूर्य की किरणें जितना जल छिन्न-भिन्न अर्थात् कण-कण कर वायु के संयोग से खींचती है उतना ही वहां से निवृत्त होकर भूमि और औषधियों को प्राप्त होता है-

आप: पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे ३ मम।
ज्योक् च सूर्य्यं दृशे।। ऋ. 1.23.21

पदार्थ-मनुष्यों को योग्य है कि सब पदार्थों में व्याप्त होने वाले प्राण (सूर्य्यम्) सूर्य लोक के (दृशे) दिखलाने वा (ज्योक्) बहुत काल तक जीवित रखने के लिए (मम) मेरे (तन्वे) शरीर के लिए (वरूथम्) श्रेष्ठ (भेषजम्) रोग नाश करने वाले व्यवहार को (पृणीत) परिपूर्णता से प्रकट कर देते हैं उसका सेवन युक्ति से करना चाहिये।

भावार्थ-प्राणों के बिना कोई भी प्राणी वा वृक्ष आदि पदार्थ बहुत काल शरीर धारण करने को समर्थ नहीं हो सकते। ऋ. 1.33.2 के भावार्थ में स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि जितने इस संसार में रचे हुए पदार्थ हैं वे सब रचने वाले का निश्चय कराते हैं और रचने वाले के बिना कोई भी पदार्थ नहीं बन सकता है। वैसे ही ईश्वर रचित सृष्टि में भी जानना चाहिए। बड़ा आश्चर्य है कि ऐसा निश्चय हो जाने पर भी ईश्वर का अनादर करके लोग नास्तिक हो जाते हैं। उन्हें यह अज्ञान क्यों कर होता है। ऋ. 1.34.10 में कहा गया है-जब यानों में जल और अग्नि को प्रदीप्त करके चलाते हैं तब वे यान और स्थानों को शीघ्र प्राप्त कराते हैं। वास्तव में भाप के निकलने से वेग में वृद्धि होती है।

वैदिक जीवन दर्शन

ले.-डॉ. महावीर, एम.ए. (वेद, संस्कृत, हिन्दी) डी. लिट्. व्याकरणाचार्य

वेद मानव-मात्र को जीवन के कल्याण का श्रेष्ठम मार्ग दिखाने वाला पवित्रम ज्ञान है। वेदों में वह जीवन दर्शन प्रतिपादित किया गया है, जो मानव की आसुरी वृत्तियों को दूर कर दैवी वृत्तियों का जागरण करता है। वेद संसार के कोटि-कोटि मानवों को सम्बोधित करते हुए कह रहा है-

''शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः''
हे अमृत पुत्रों! सबके सब सुनो।

अमृत पुत्र कहकर सम्बोधित कर वेद हमें जीवन का सच्चा सुख अथवा आनन्द प्रदान करने वाला जीवन दर्शन सुनाना चाहता है। हम जीवन और जगत् को किस रूप में देखें, ताकि संसार के सत्य का साक्षात्कार कर सकें। सारी भ्रान्तियाँ, समस्त सन्देह दूर हो जायें, सब प्रकार के भेद-भाव मिट जायें और विश्व-मानव एकत्त्व प्राप्त कर लें। आज सारा संसार विभिन्न धर्मों, विभिन्न जातियों, नाना प्रकार के मत-मतान्तरों और धाराओं में बँटा हुआ है। परन्तु वेद की दृष्टि में संसार के सभी मानव एक हैं। जैसे उस ईश्वर के बनाये सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, बादल, वर्षा, वृक्ष, वनस्पति सबके लिए हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए हैं।

वैदिक दर्शन का मूलभूत विचार यह है-'प्रकृति है, परन्तु प्रकृति ही सब कुछ नहीं है, प्रकृति के पीछे आत्मतत्त्व है, जिसे कुछ लोग परमात्मा कहते हैं। शरीर है, परन्तु शरीर ही सब कुछ नहीं, शरीर के पीछे आत्मतत्व है, वही तत्व जिसे कुछ लोग जीवात्मा कहते हैं। वेद का चिन्तन त्यागवादी है न कि भोगवादी। संसार के भोग्य पदार्थों को देखकर आँखें बन्द करना उचित नहीं, संसार को भोगो, परन्तु त्यागपूर्वक, संसार में रहो, परन्तु निर्लिप्त होकर, निस्संग होकर पानी में कमल-पत्र की तरह, घी में पानी की बूँद की तरह। भोग और त्याग का समन्वय भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का मेल वैदिक दर्शन का मूलाधार है।

आत्मज्ञानः वैदिक जीवन दर्शन की उत्कृष्ट अवस्था है-आत्म ज्ञान अथवा आत्म दर्शन। बृहदारण्यक उपनिषद में ऋषि याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी मैत्रेयी के मनोरंजक संवाद में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं-'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।'

आत्मा के सम्बन्ध में यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि 'तू सबकी नाप और सबकी कसौटी है।'

आत्मदर्शी व्यक्ति के लिये भेद की सब दीवारें ढह जाती हैं और वह सब प्राणियों में एक ही आत्म-तत्व के दर्शन करता हुआ सबमें समभाव रखकर लोकोपकार में प्रवृत्त होता हैं।

परमात्म सत्ता : जैसे शरीर में चेतनता देखकर, उसमें किसी आत्म-सत्ता का विचार उठता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में एक नियामिका तथा व्यवस्थापिका शक्ति की प्रतीति एक विश्वात्मा की सत्ता को सिद्ध करती है। उस परम-सत्ता पर अटूट विश्वास और ईश्वर संसार के कण-कण में व्याप्त है, प्रत्येक प्राणी के अच्छे बुरे सभी कर्मों को वह देखता है, यह मानकर सदा शुभ-कर्म करना यह वैदिक दर्शन का सार तत्व है। यजुर्वेद में कहा है-'योगी उसे देखता है जो हृदय-गुहा में छिपा है। वेद में स्थान-स्थान पर ईश्वर को विश्व का पिता, माता, भ्राता, सखा, बन्धु एवं जनिता कहा गया है। वेद-मन्त्रों में परमात्मा के विविध गुणों और शक्तियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। परमात्मा की अनुभूति से आत्मा की नैतिक भावना प्रखर हो जाती है।

वैदिक आस्तिकवाद की एक और विशेषता यह है कि प्रत्येक आत्मा का परमात्मा के साथ सीधा सम्बन्ध है। मेरे और मेरे परमात्मा के बीच में कोई मध्यस्थ नहीं। जब परमात्मा मेरे हृदय में है तो वह अन्य किसी की अपेक्षा मेरे अधिक निकट है-'तू हमारा है, हम तेरे हैं।'

कर्म सिद्धान्तः वैदिक जीवन दर्शन का एक प्रमुख अंग है-कर्म सिद्धान्त, मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसको उस कर्म का वैसा ही फल प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त को मान लेने पर मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति शुभकर्मों की ओर हो जाती है। वेद में कहा है कि मनुष्य जैसा पकाता है वह पकाने वाले को वैसा ही प्राप्त होता है।

ब्रह्म साक्षात्कार या मोक्षः वैदिक दर्शन में मानव जीवन का परमलक्ष्य मोक्ष माना गया हैं मुक्ति वह अवस्था है जिसमें मनुष्य सब वासनाओं को त्यागकर पूर्ण काम हो जाता है और सब प्रकार के कष्ट-क्लेशों से दूर विशुद्ध, दिव्य आनन्द के महासमुद्र में हिलोरें लेने लगता है। परमपिता परमेश्वर मुक्त स्वभाव है, उनकी ज्ञान-बल-क्रिया स्वाभाविक है। प्रभु निर्विकार हैं, एकरस एवं आनन्दस्वरूप हैं। इसके विपरीत मनुष्य की मुक्ति परिश्रम-साध्य है, स्वभाव-सिद्ध नहीं। मनुष्य यज्ञ, योग एवं उपासना आदि के द्वारा जितना-जितना परमात्मा का सामीप्य प्राप्त करेगा, उतना ही अधिक आनन्द का अनुभव करेगा। मुक्ति की दशा में जीवात्मा-परमात्मा का अत्यन्त सामीप्य होता है। यजुर्वेद में कहा गया है-

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।। यजु. ३१।१८

अर्थात् मैंने इस परमात्म देवरूप पुरुष को जान लिया है जो महान् है, सूर्य जैसा तेजस्वी है और अन्धकार से परे हैं। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु को जीत सकता है। अमरता की ओर जाने का और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

इस प्रकार वैदिक जीवन दर्शन के केन्द्रीभूत विषय है परमात्मा, आत्मा, प्रकृति, कर्मफल, मोक्ष, ऋत एवं सत्य। इनके अतिरिक्त भी ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दू हैं, जिन पर विचार करना प्रासंगिक होगा।

समत्व भावनाः वेद के अनुसार सब मनुष्य भाई-भाई हैं, जन्म से न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। इस समानता के भाव को धारण करते हुए हम सब ऐश्वर्य या उन्नति के लिए मिलकर प्रयत्न करें।

''अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।''
ऋग्० ५।६०।५

एक ऋचा में कहा गया है ''सब चलने वालों का मार्ग पर समान अधिकार है।''

समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे।
ऋग्० २।१३।२

ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त (१०।१९८) समता का अत्यन्त हृदयस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत करता है-

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

अर्थात् हे मनुष्यों! आप लोग परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर रहो। परस्पर मिलकर प्रेम से बातचीत करो। विरोध छोड़कर एक समान वचन कहो। आप लोगों के मन एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार पहले के विद्वज्जन सेवनीय और मनन करने योग्य प्रभु का ज्ञान सम्पादन करते हुए अच्छी प्रकार उपासना करते रहे हैं, उसी प्रकार आप लोग भी ज्ञान-सम्पन्न होकर सेवनीय अन्न का सेवन एवम् उपासनीय प्रभु की उपासना करो। आप सबका वचन और विचार एक समान हो। सबका चित्त एक दूसरे के साथ मिला हो। मैं आप लोगों को एक समान विचारवान् करता हूँ। आप लोगों के संकल्प और भाव एक समान रहें। आपके हृदय एक समान रहें। आप लोगों के मन समान हों, जिससे आप लोगों का परस्पर का कार्य सदैव सहयोगपूर्वक भली भांति हो सके। **(क्रमशः)**

पृष्ठ 2 का शेष-सुख-सुविधाओं को बढ़ाने...

के कारण हमारी खेतियां पकने लगती है। इन हरी भरी खेतियों के हरे दुग्धीय अन्नों का हम सेवन करके स्वयं को पौष्टिकता देते हैं। बसंत के पश्चात मौसम में थोड़ा और परिवर्तन आता है, अब अग्नि कुछ तीव्र हो जाने से गर्मी धीरे धीरे बढ़ने लगती है। इससे हमारे खेतों में लहलहा रही फसलें पक जाती है और हम इन्हें काट कर इनका भंडारण कर लेते हैं ताकि आने वाले समय में इनके उपभोग से हम अपने जीवन को आगे बढ़ा सकें। इस प्रकार यह सब ऋतुएं भी इस अग्नि के प्रभाव से ही बनाती हैं।

अन्न तथा जल को शुद्ध करती हैं:-

अन्न तथा जल को शुद्ध करने के दो साधन होते हैं। एक भौतिक अग्नि और दूसरे सूक्ष्म अग्नि अथवा अन्दर की अग्नि अथवा प्राकृतिक अग्नि। अनेक खाने के पदार्थ इस प्रकार के होते हैं, जिन्हें हम सीधे तोड़ कर नहीं खा सकते। जैसे काजू का फल। इस फल को वृक्ष से तोड़कर भौतिक अग्नि में पकाया जाता है, पकाने पर इसका छिलका उतारा जाता है और फिर यह फल खाने के योग्य बन कर हमें पौष्टिकता देने का साधन बनता है। इस प्रकार ही अनेक प्रकार के अन्नों को भी पका कर ही खाया जाता है, कच्चा खाने से यह हानि करते हैं। गेहूं काटते ही खा लेवें तो पेचिश पैदा कर देता है, वर्षा ऋतु की ठंडक इसे ठंडा करती है और फिर यह खाने के योग्य होता है। काजू भी यदि वृक्ष से तोड़कर सीधा मुंह में डालें तो मुंह पक जाता है। इस सब के शोधन के लिए हमें भौतिक अग्नि का प्रयोग करना होता है तो अन्नादि के शोधन में प्राकृतिक अग्नि कार्य करते हुए सब प्रकार के जलों को शुद्ध करती है और सब प्रकार के अन्नों का भी शोधन करती है।

हम जो अग्निहोत्र कारते हैं, उसकी क्रियाओं को जब हम बड़ी महीनता से समझते हैं तो हम पाते हैं कि ऊपर की सब गुणों वाली तथा मानव के लिए लाभदायक जितनी भी अग्नियाँ हैं इस अग्निहोत्र से हमें मिलती हैं। जहां पर यह अग्निहोत्र नहीं होता, वहां का सब कुछ दूषित हो जाता है। कुछ सीमा तक सूर्य की अग्नि इस दूषण को दूर करने का कार्य करती है किन्तु पूरा प्रदूषण दूर करने के लिए अग्निहोत्र की ही आवश्यकता होती है।

वर्ष 2021 के नए कैलेण्डर मंगवाए

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.), चौक किशनपुरा जालन्धर द्वारा प्रति वर्ष हजारों की संख्या में नव वर्ष के कैलेण्डर महर्षि दयानन्द के चित्र के साथ देसी तिथियों सहित छपवाए जाते हैं। गत कई वर्षों से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) वैदिक साहित्य आधे मूल्य पर आर्य जनता को उपलब्ध करवा रही है। इसी प्रकार सन् 2021 के महर्षि दयानन्द सरस्वती के चित्र वाले कैलेण्डर भी आधे मूल्य पर आर्य जनता को दिए जाएंगे। पिछले वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी कैलेण्डर का मूल्य छह रुपये प्रति तथा 600 रुपए सैकड़ा रखा गया है। इसलिये सभी आर्य समाजें, शिक्षण संस्थाएं व आर्य बन्धु शीघ्र अति शीघ्र कैलेण्डर सभा कार्यालय से मंगवा कर अपने सदस्यों व इष्ट मित्रों में वितरित करें। कार्यालय का समय प्रात: 10.00 बजे से सायं 5 बजे तक है। रविवार को अवकाश रहता है इसलिये समय पर अपना व्यक्ति भेज कर कैलेण्डर मंगवाएं।

प्रेम भारद्वाज
सभा महामंत्री

ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि।।
-अथर्व० ९.२.२३

भावार्थ-परमेश्वर! आप चर-अचर संसार से और आकाश और जलनिधि से बहुत बड़े हैं। ऐसे आपको ही मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि।।
-अथर्व० ९.२.२४

भावार्थ-उस महान् सर्वव्यापक परमात्मा को वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि नहीं पहुँच सकते। इन सब को अपने शासन में चलाने वाला वह प्रभु ही बड़ा है। उस आपको ही हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

शोक प्रस्ताव

आर्य समाज गऊशाला रोड़ फगवाड़ा की एक विशेष बैठक सम्पन्न हुई जिसमें आदरणीय श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी के असामयिक निधन पर गहरा शोक व्यक्त किया गया। श्री तेजपाल जी आर्य समाज के कर्मठ और समर्पित कार्यकर्ता थे। आर्य समाज के कार्यक्रमों में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल जी इतने विनम्र व सज्जन व्यक्ति थे कि जिससे भी मिलते थे उसे अपने मधुर व्यवहार के द्वारा अपना बना लेते थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिष्ठाता साहित्य विभाग के उत्तरदायित्व को अत्यन्त निष्ठा के साथ निभा रहे थे। उनके चले जाने से आर्य जगत् को अपूरणीय क्षति हुई है और हम सबने अपना एक विश्वस्त साथी खो दिया है। समाज के प्रति समर्पित आत्मा को परमपिता परमात्मा अपनी शरण में स्थान दें तथा परिवार एवं सम्बन्धी जनों को यह दु:ख सहने करने का सामर्थ्य दें।

इस अवसर पर पुण्यात्मा स्व. पंड़ित हरबंस लाल जी पूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को उनकी पुण्यतिथि पर याद किया गया तथा आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के लिए उनके द्वारा दिये गए अमूल्य योगदान को स्मरण करते हुए उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दी गई। इस बैठक में श्री यश चोपड़ा महामन्त्री, श्री बलराज खोसला, श्री सुशील कोहली, श्री राकेश शर्मा, श्री सुरेन्द्र चोपड़ा, श्री सुशील वर्मा, श्री धर्मवीर नारंग, श्रीमती नीलम चोपड़ा, श्रीमती सरला चोपड़ा, श्रीमती सरला भारद्वाज, श्री रणजीत सोंधी, श्री राजिन्द्र सोंधी जी उपस्थित थे।

-कैलाश नाथ भारद्वाज प्रधान आर्य समाज गौशाला रोड़ फगवाड़ा

भावपूर्ण श्रद्धांजलि

महर्षि दयानन्द मठ वेद मन्दिर ढन्न मोहल्ला जालन्धर के सभी सदस्य एवं प्रबन्धकर्तृ सभा तथा ट्रस्ट के अधिकारी महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त, दानवीर भामाशाह, ईश्वरभक्त यज्ञ भक्त, भारतवर्ष की अनेक संस्थाओं के संस्थापक एवं संरक्षक, लगनशील, कर्मवीर, पद्मभूषण सम्मान से राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित महाशय धर्मपाल जी के निधन पर भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

महाशय धर्मपाल जी धर्म के मार्ग पर चलने वाले महान् योद्धा थे। उनके जीवन का एक-एक क्षण सेवा कार्यों में व्यतीत होता था। महाशय धर्मपाल जी ने अपने जीवन काल में अनेक विद्यालयों की स्थापना की, अनेक गुरूकुलों एवं गौशालाओं का वे पोषण करते थे। इनके संरक्षण में पूरे भारतवर्ष में अनेकों संस्थाएं कार्य कर रही हैं। महाशय धर्मपाल जी आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के आजीवन प्रधान रहे।

हम सभी परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वे इस महान् आत्मा को अपने चरणों में स्थान देकर शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें। हम सभी महाशय धर्मपाल जी के बताए गए मार्ग पर चलते हुए उनके द्वारा प्रारम्भ किए गये अधूरे कार्यों को पूरा करें।

-राजिन्द्र देव विज महामन्त्री दयानन्द मठ

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

पंडित हरबंस लाल शर्मा जी की याद में भाषण प्रतियोगिता का आयोजन

श्री लाल बहादुर शास्त्री आर्य महिला कालजिएट सीनियर सैकेंडरी स्कूल बरनाला में पंडित हरबंस लाल शर्मा जी की याद में भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस अवसर पर उपस्थित आर्य समाज के आर्यजन एवं प्रतियोगी छात्र।

श्री लाल बहादुर शास्त्री आर्य महिला कालजिएट सीनियर सैकेंडरी स्कूल एवं कालेज बरनाला के प्रांगण में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के भूतपूर्व प्रधान व गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व चांसलर पंडित हरबंस लाल जी शर्मा जी की याद में कालेज छात्राओं को सर्वांगीण जीवन, उन्नति और सफलता के उद्देश्य से भाषण प्रतियोगिता, पोस्टर मेकिंग प्रतियोगिता, लेखन प्रतियोगिता, रंगोली, स्लोगन मेकिंग प्रतियोगिता और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के महाग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश के आधार पर वैदिक क्विज करवाया गया। पर्यावरण प्रदूषण विषय पर पोस्ट मेकिंग और भाषण प्रतियोगिता, अनुपयोगी घरेलू वस्तुओं को पुन: कैसे उपयोग में लाए एवं नारी शिक्षा में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के योगदान विषयों पर निबंध प्रतियोगिता करवाई। सर्वप्रथम छात्राओं द्वारा गायत्री मंत्र उच्चारण द्वारा परमपिता परमात्मा की स्तुति प्रस्तुत की गई। तत्पश्चात प्रिंसीपल डा. नीलम शर्मा ने छात्राओं को वैदिक सिद्धान्तों के द्वारा जीवन निर्वाह करने के लिये प्रेरित करते हुये कहा कि विभिन्न प्रतियोगिताओं का उद्देश्य संभागियों में स्वस्थ स्पर्धा, विषय के प्रति रूचि, आत्मविश्वास, जागरूकता, वैचारिक व्यापकता एवं पारस्परिक सहयोग से कार्य करने की भावना विकसित करना है। हिन्दी विभाग की प्राध्यापिका मैडम मधुबाला ने पंडित हरबंस लाल जी शर्मा के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुये उनके दानी, उदार, स्वभाव तथा उनकी महानता को स्पष्ट किया और महर्षि दयानन्द सरस्वती के महान ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित शिक्षा और उपदेश को सांझा किया। इस अवसर पर कालेज प्रबन्धक समिति के प्रधान डा. सूर्यकान्त शौरी, उप प्रधान केवल जिन्दल और अन्य सदस्यगण श्री संजीव शौरी, श्री महिन्द्र खन्ना, सरदार सुखमहिन्द्र सिंधू, प्रदीप गोयल एवं प्रिंसीपल डा. नीलम शर्मा के द्वारा विभिन्न प्रतियोगिताओं में विजेता छात्राओं को ईनाम देकर सम्मानित किया। वैदिक क्विज में पहला स्थान आर्य माडल स्कूल बरनाला ने, दूसरा स्थान गांधी आर्य हाई स्कूल बरनाला की टीम ने प्राप्त किया। कविता प्रतियोगिता में प्रभजोत ने पहला और जसप्रीत ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। रंगोली प्रतियोगिता में मुस्कान ने पहला और जसप्रीत ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। पोस्टर मेकिंग प्रतियोगिता में कमलप्रीत ने पहला और अमरजीत ने दूसरा, निबन्ध लेखन में नृपजीत ने पहला और सिमरण ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। प्रबन्ध समिति के प्रधान श्री सूर्यकान्त शौरी ने अपने सम्बोधन में वेदों के महत्व को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के तीसरे नियम में वेदों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए और स्वाध्याय की ओर प्रेरित करने की दृष्टि से लिखा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द का इस नियम को लिखने का यही आशय था कि सभी सत्य विद्याओं का मूल स्रोत वेद हैं। इसलिए हर मनुष्य को वेदों का स्वाध्याय करते हुए उन सत्य विद्याओं को जानने का प्रयास करना चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेदों का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना आर्यों का परम धर्म बताया है। जो इस परम धर्म का पालन नहीं करता , वह आर्य कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। इसलिए हर व्यक्ति को स्वाध्याय की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि स्वाध्याय आत्मा का भोजन है। बिना ज्ञान के मनुष्य की आत्मिक उन्नति सम्भव नहीं है और ज्ञान की प्राप्ति बिना स्वाध्याय के सम्भव नहीं है। अंत में स्कूल इंचार्ज मैडम किरण सीकरी ने सभी का धन्यवाद करते हुये स्कूल की गतिविधियों से अवगत करवाया। इस अवसर पर बरनाला की सभी आर्य शिक्षण संस्थाओं के प्रिंसीपल, अध्यापक, छात्र और स्कूल एवं कालेज का समूह स्टाफ उपस्थित हुआ। इस अवसर पर आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनन्य शिष्य, आर्य जगत के दानवीर, संस्कृति और संस्कारों के संयोजक श्री धर्मपाल गुलाटी के पंचतत्व में विलीन होने के दुखद मौके पर दो मिनट का मौन धारण किया गया और उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

–प्रिंसीपल डा. नीलम शर्मा

वेदवाणी

निष्काम कर्मयोग की महती महिमा

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

–यजु:० ४०।२

ऋषि:–**दीर्घतमा:**।। देवता–**आत्मा**।। छन्द:–**भुरिगनुष्टुप्**।।

विनय–मनुष्य को चाहिए कि वह कर्म करता हुआ ही जीना चाहे। यदि वह कर्म नहीं करता है तो उसे जीवित रहने का अधिकार नहीं है। यह जीवन कर्म करने के लिए ही दिया गया है। हे मनुष्य! क्या तू डरता है कि कर्म करने से तू कर्म में लिप्त हो जाएगा, बँध जाएगा? नहीं, यदि तू पूर्वोक्त प्रकार से त्यागपूर्वक जगत् को भोगेगा, ईशार्पण बुद्धि से अपने सब व्यवहार करेगा, सर्वथा 'मम'–'अहं' को छोड़कर कर्म करेगा तो तेरे ऐसे कर्म कभी तुझे बन्धन कारक नहीं होंगे। ऐसे निष्काम कर्मों का कभी तुझ 'नर' में लेप नहीं होगा। सचमुच ऐसे निष्काम कर्म करने वाले ही संसार में असली नर होते हैं, व्यवहार को चलाने वाले होते हैं, नेता होते हैं, अत: हे नर! तू अनासक्त होकर त्यागपूर्वक कर्मों को कर। यही कर्मलेप से बचने का उपाय है, बल्कि इस निष्काम कर्म की साधना के सिवाय संसार में और कोई उपाय कर्मलेप से बचने का नहीं है। क्या तू समझता है कि कर्म न करने से तू कर्मलेप से बच जाएगा? अरे भोले! जब तक यह शरीर है, जीवन है, तब तक कर्मत्याग हो ही कैसे सकता है? कुछ–न–कुछ शारीरिक या मानसिक कर्म किये बिना तू जी ही कैसे सकता है? यदि कर्म से बचने के लिए तू आत्मघात भी कर डालेगा, तो भी तुझे छुटकारा नहीं मिलेगा। तुझे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा और तुझे इस आत्मघात का पाप भी लगेगा। तू देख कि जिस समय कर्म करना आवश्यक हो उस समय कर्म न करने से अकर्म का पाप भी लगता है, अत: याद रख कि कर्म त्यागने से तो तुझे कभी निर्लेपता नहीं मिलेगी। इसका साधन तो एक ही है कि कर्म किया जाए, किन्तु निर्लेप होकर किया जाए, अत: हे मनुष्य! तू उठ और इस अकर्म की तामसिक अवस्था को त्यागकर उत्साहपूर्वक निर्लेप कर्मों को किया कर, सर्वथा निरहंकार होकर, सदा प्रभु–अर्पित अवस्था में रहते हुए सहज प्राप्त कर्मों को नि:सङ्ग होकर सदा किया कर। ऐसे कर्मों को तू अपने सम्पूर्ण सौ वर्ष तक करता जा, अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक करता जा।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड़ जालन्धर पजाब से मुद्रित एव गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**